सहज कविता

अद्यतन कविता की त्रैमासिकी

सम्पादक - सुधेश

अंक ११-१२ (जूलाई-दिसम्बर १९९६)

सिन्धी अकादमी, दिल्ली

भारत की आधुनिक प्रमुख साहित्यिक भाषाओं में केवल सिन्धी ही एकमात्र भाषा है, जिसका अपना कोई विशेष प्रान्त नहीं है । उसके बोलने वाले इस विशाल देश के विभिन्न क्षेत्रों में बिखरे हुए हैं । अतः सिन्धी भाषा के संरक्षण और विकास के लिए विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता है । इस वास्तविकता का अनुभव कर १९६७ में सिन्धी भाषा को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में अन्य प्रमुख भाषाओं के साथ स्थान दिया गया । केन्द्र सरकार ने संस्कृत और उर्दू के साथ सिन्धी भाषा के विकासार्थ भी योजनाएं शुरू कीं । राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार ने सिन्धी भाषा और साहित्य के विकास के लिए ७ जुलाई १९९४ को सिन्धी अकादमी की स्थापना की है ।

सिन्धी अकादमी का उद्देश्य और कार्य

सिन्धी अकादमी का प्रमुख उद्देश्य है सिन्धी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति का संरक्षण और विकास करना । इसके लिए जिन योजनाओं को क्रियान्वित करने की कल्पना की गयी है, उनमें प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार हैं :-

१. सिन्धी भाषा के प्रचार, प्रसार तथा शिक्षण के लिए विभिन्न योजनाएं शुरू करना तथा अपेक्षित सामग्री उपलब्ध करवाना । विद्यार्थियों को पुरस्कार, छात्रवृत्तियां, आदि प्रदान करना ।

२. साहित्यकारों का सम्मान करना तथा उच्च कोटि की साहित्यिक कृतियों पर पुरस्कार प्रदान करना ।

३. युवा पीढ़ी के उदीयमान लेखकों तथा कलाकारों का मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन करने के लिए कार्यशालाओं का आयोजन करना ।

४. साहित्यिक सम्मेलन, विचार मंच, व्याख्यान माला, आदि का आयोजन करना।

५. सिन्धू लोक संस्कृति, इतिहास, भाषा, सिन्धी उपभाषाओं, आदि विषयों पर अनुसंधान योजनाएं शुरू करना ।

६. सिन्धी में विभिन्न विषयों पर संदर्भ ग्रंथ प्रकाशित करना ।

७. आदान-प्रदान और अनुवाद योजनाओं द्वारा राष्ट्रीय एकता, अखण्डता और भावात्मक ऐक्य का प्रसार करना ।

८. संदर्भ ग्रंथालय, सिन्धू लोक संस्कृति (संगीत, नृत्य, चित्रकला, नाट्य, आदि) की परम्परा के संरक्षणार्थ संग्रहालय, आदि की स्थापना करना ।

९. सिन्धी नाटक और रंगमंच का विकास करना और कलाकारों को प्रोत्साहित करना ।

१०. अरबी-सिन्धी लिपि से अपरिचित युवा पीढ़ी के सिन्धियों के लिए तथा अन्य भाषा-भाषी विद्वानों के लिए देवनागरी लिपि में सिन्धी साहित्य प्रकाशित करना ।

११. उपरिलिखित कार्यों में व्यस्त व्यक्तियों तथा संस्थाओं को आर्थिक सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करना ।

सहज कविता (दोहा अंक)

वर्ष ३ त्रैमासिक जुलाई-दिसम्बर १९९६ अंक ११-१२

क्रम		पृ० संख्या
विचार विमर्श		
सहज कविता और दोहा	सम्पादकीय	२
दोहे	देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'	४
	वेद प्रकाश पाण्डेय	८
	रामहित चौरसिया	१०
	राम स्नेहीलाल शर्मा 'यायावर'	११
	महेश दिवाकर	११
	रामगोपाल परिहार	१२
	श्यामवृक्ष मौर्य	१२
	रामानुज त्रिपाठी	१२
	रोहिताश्व अस्थाना	१३
	शिवकान्त मिश्र 'विद्रोही'	१३
	राम निवास मानव	१४
	राधेश्याम शुक्ल	१४
	जगन्नाथ त्रिपाठी	१४
	सुधेश	१५
दोहा, एक लोकप्रिय छन्द	श्रीरंजन सूरिदेव	१५
नया दोहा, नये प्रसंग	देवेन्द्र शर्मा इन्द्र	१७
दोहे की प्रासंगिकता	राम स्नेहीलाल शर्मा 'यायावर'	२०
आज की कविता सहज कविता	अंजनी दुबे 'भावुक'	२४
मूल्यांकन	सुधेश	२६

सम्पादक-सुधेश
प्रकाशक-श्रीमती सुशीला शर्मा
मूल्य-आठ रुपये, वार्षिक ३२ रुपये, (संस्थाओं के लिए ४० रुपये)
सम्पर्क - फ्लैट १३३५ पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली ११००६७ ।

विचार विमर्श

कविता के शिल्प, छन्द, लय सम्बन्धी मान्यताएं समय समय पर बदलती रही हैं । एक समय था जब कविता छन्दशस्त्र के नियमों के आधार पर ही लिखी जाती थी । ...आनुनिक काल में छन्द को ... काव्येतर मूल्य माना गया तथा मुक्तछन्द का व्यापक आन्दोलन चलाया गया । निराला ने जिस मुक्तछन्द को समर्थन दिया उसमें लय को केन्द्रीय महत्व मिला । उनका कथन है कि "मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है । वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उस का नियमराहित्य उसकी मुक्ति । ...मुक्तछन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्त है ।'' तात्पर्य यह है कि निराला ने कविता को छन्द शास्त्र की जटिलता से मुक्त कर लयात्मक प्रवाह से जोड़ दिया ।

किन्तु आज कविता इतनी गद्यात्मक हो गयी है कि उसकी कोई विशिष्ट पहचान नहीं रह गयी है । इसमें कवि कर्म अधिक आसान हो गया है । नागार्जुन कहते हैं - "छद्म आधुनिकता को छांटने की यही तरीक़ा है कि हम छन्द की ओर लौटें । '' मेरा मानना है कि हम छन्द की शास्त्रीय जटिलता की ओर न भी लौटें, किन्तु उस लय और प्रवाह के साथ कविता को बांधे रखें जो उसका मूल धर्म है । **-डॉ० जगन्नाथ पण्डित (सन्तरामपुर, गुजरात)**

'सहज कविता पर पुनर्विचार' के साथ ही अंक (आठवां) की सम्पूर्ण सामग्री पढ़ गया । आपने अपने उक्त सम्पादकीय आलेख में अन्य विद्वानों और पाठकों द्वारा सहज कविता के सम्बन्ध में उठाई हुई शंकाओं, विचारों, मतभेदों आदि का समुचित और विस्तार से समाधान प्रस्तुत किया है । ... अंक में प्रकाशित कविताएं उस कसौटी पर खरी उतरती हैं । ...कविता बहुतों के लिए तो आस्वाद्य हो सकती है, पर सबके लिए नहीं । ...यह कहना आवश्यक नहीं कि कविता को सर्वजन सुलभ और सर्वजन सुबोध्य होना ही चाहिए । कवि स्वयं आज भी अपने ही लिए कविता लिखता है । **-डॉ० सन्हैया लाल ओझा (कलकत्ता)**

(सम्भव है कि कुछ कवि स्वयं अपने लिए कविता लिखते हों अथवा अज्ञेय की तरह विशिष्ट शिक्षित वर्ग के लिए लिखते हों पर अधिकंश कवि पाठकों के लिए भी लिखते हैं । पाठकों की संख्या उच्चवर्ग और मध्यवर्ग से आगे बढ़कर निम्नवर्ग तक फैली है । इस विशाल पाठक समूह की उपेक्षा नहीं की जा सकती । शिक्षा के विस्तार के साथ जैसे शिक्षा पर अभिजात वर्ग की इजारेदारी टूटी है, वैसे ही

साहित्य के प्रसार से संस्कृति पर उच्चवर्ग का वर्चस्व समाप्त प्राय: है । कविता को सर्वजन सुलभ और सर्वजन सुबोध्य न बनाना आम जनता को संस्कृति से दूर रखने के बराबर है । कविता यदि सहज सम्प्रेष्य है तो अल्प शिक्षित व्यक्ति के लिए भी आस्वाद्य हो सकती है । यदि वह पहेली है तो शायद कवि के लिए भी आस्वाद्य न होकर बौद्धिक व्यायाम का साधन हो सकती है । -सम्पादक)

मेरे विचार में केवल तुक मिलाने से आन्तरिक लय नहीं आती । वह एक प्रवाह है । ...कोरे गद्य और प्रगीतधर्मी गद्य में अन्तर है । अर्थ संहति एक लयात्मक गद्य को कविता पदवाच्य बना सकती है । **-डॉ० तारिणी चरण दास**

"सहज कविता और गज़ल पर आपने सम्पादकीय अग्रलेख में (अंक-७) बहुत ही अच्छी विचार सामग्री प्रस्तुत की है । 'तग़ज़्ज़ल' की चर्चा नई है और ध्यानाकर्षक भी । **-डॉ० कुमार विमल (पटना)**

आप सहज कविता पर या यों कहिये कि कविता में सहजता पर जम कर लिख रहे हैं .. मैं स्वयं कविता में सहजता का पक्षधर हूं । ...समकालीन परिवेश में जहां कविता किसी के पल्ले नहीं पड़ती, सहज कविता की मांग और प्रस्तुति कविता को जीवनदान देने के समान है । जो कविता जितनी सहज होगी, वह उतनी ही सम्प्रेष्य, मार्मिक और प्रभविष्णु भी होगी । **-डॉ० सुन्दर लाल कथूरिया**

'सहज कविता' का नया अंक (आठवां) मिल गया । ...मैं आपकी बात से सहमत हूं कि कविता कथ्य में सहज और शिल्प में लय प्रधान होकर ही सहजता की ओर लौटेगी । जो हृदय की वस्तु है, उसे पिछले तीन दशकों में यारों ने मस्तिष्क का भार बना दिया है । आज सारे संसार में कविता की गीतात्मकता को महत्व मिल रहा है । इस वर्ष का नोबुल पुरस्कार आइरिश कवि सीमस हीनी को देते हुए स्वीडिश अकादमी ने उनकी कविताओं के गीतात्मक सौन्दर्य और नैतिक मूल्यों की गहराई के लिए प्रशंसा की है । संसार में लगभग सब जगह ही गीतात्मकता, छन्द और लय कविता में पुन: लौटकर आ रहे हैं । हिन्दी में भी उन्हें आना ही है । - **डॉ० रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' (फीरोज़ाबाद)**

सहज कविता और दोहा

विगत वर्षों से हिन्दी की सहज कविता अनेक रूपों में लिखी जा रही है । एक रूप छन्दोबद्ध कविता का है, दूसरा मुक्त छन्द कविता का । दोहा छन्दोबद्ध कविता का एक रूप है । गीत और ग़ज़ल अनेक छन्दों और बहरों में लिखी जा सकती है, लिखी गई है । इसलिए गीतों और ग़ज़लों को छन्दोबद्ध कविता की श्रेणी में रखा जा सकता है । इन्हें मुक्तक काव्य भी कहा जा सकता है, यद्यपि हिन्दी में मुक्तक शब्द रुबाई के समकक्ष भी इस्तैमाल होता रहा है । पर मुक्तक रुबाई का पर्यायवाची नहीं है ।

यों तो हिन्दी कविता में बहुत से छन्दों के प्रयोग का लम्बा इतिहास है, पर दोहा समकालीन हिन्दी कविता में ग़ज़ल की तरह विशेष स्थान पा गया है । इसके कारणों की खोज होनी चाहिए । जो छन्द से ही बिदकते हैं और अपनी तथाकथित गद्यात्मक कविता को ही युगीन कविता का प्रतिनिधि समझते हैं, और छन्द तथा लय की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं, उन से बहस करना व्यर्थ हैं । शायद वे बहस करना भी नहीं चाहते क्योंकि अपने आग्रहों में बद्ध हैं । मौन साध लेना उपेक्षा का आधुनिक तरीक़ा है ।

दोहा हिन्दी के प्राचीनतम छन्दों में से एक है, जिसका उपयोग प्राकृत तथा अपभ्रंश के कवियों ने भी किया था । तब उसे दूहा कहा गया था । यह वैदिक साहित्य में प्रयुक्त आर्या छन्द से मिलता जुलता है, जो संस्कृत कवियों द्वारा भी अपनाया गया । यह भी दोहे के समान चार चरणों वाला छन्द है, जिसकके पहले तथा तीसरे चरण में १२ मात्राएं होती थीं, और दूसरे तथा चौथे चरण में क्रमशः १८ एवं १५ मात्राएं होती थीं, अर्थात् कुल ५७ मात्राएं । यह भी अर्द्धसम मात्रिक छन्द है, जैसा कि दोहा । आर्यों द्वारा प्रयुक्त छन्द को, अन्य उपयुक्त नाम के अभाव में, आर्या कहा गया होगा । पर यह वैदिक तथा संस्कृत कवियों का प्रिय छन्द था, जिस का प्रचलन प्राकृत तथा अपभ्रंश में 'दूहा' के नाम से हुआ । 'दूहा' से ही 'दोहा' शब्द का विकास हुआ । इसमें कवि द्वारा दुहे गये विचारों-अनुभवों की ओर संकेत है । इस प्रकार 'दोहा' कवि द्वारा किये गये जगत के दोहन अथवा चिन्तन-मनन से भी गहरा सम्बन्ध रखता है । जैसे जापानी कविता में 'हाइकु' छन्द दार्शनिक कवियों, सन्तों, भक्तों का प्रिय छन्द रहा है, वैसे ही हिन्दी के पुराने भक्त कवियों, सन्तों, सूफ़ियों और यहां तक कि दरबारी कवियों में दोहा छन्द की

लोकप्रियता बनी रही मध्यकालीन भक्त कवियों में ढेर सारा नीतिकाव्य अथवा उपदेशपरक काव्य दोहों में लिखा , और प्रत्येक रीतिकालीन कवि ने श्रृंगारिकता के पंक का प्रक्षालन करने तथा परलोक सुधारने के लिए थोड़ा भक्तिपरक तथा उपदेशात्मक काव्य भी दोहों में लिखा । अत: कहा जा सकता है कि हिन्दी का सारा नीतिकाव्य प्राय: दोहा छन्द में लिखा गया । यदि कोई दूसरा इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय है तो वह चौपाई है ।

दोहा शब्द में दो पंक्यिों की ध्वनि भी निहित है । कुछ ने दोहा को 'दोहरा' भी कहा, जिसमें दोहरी पंक्तियों अथवा दो पंक्तियों का संकेत स्पष्ट है । वस्तुत: दोहे में चार चरण होते हैं, पर दो चरणों को एक पंक्ति में लिखा जाता है ।

पर प्रश्न यह है कि समकालीन कविता में दोहों के अधिक प्रचलन के क्या कारण हैं ? एक कारण तो तथाकथित गद्य कविता के प्रति पाठकों तथा कवियों की बढ़ती अरुचि है । गद्य कवियों ने (जिनमें से अधिकांश छद्म कवि हैं) हिन्दी पाठकों की विशाल संख्या को इतना निराश किया है कि हिन्दी कविता के प्रति ही उनकी अरुचि हो गई । हिन्दी कविता की बढ़ती अलोकप्रियता से चिन्तित होकर अनेक समकालीन कवि ग़ज़ल और दोहे की तरफ लौटे । वास्तविकता यह है कि केवल गीतकारों ने ही ग़ज़लें और दोहे नहीं लिखे, बल्कि गद्य कविता लिखने वाले भी ग़ज़ल और दोहे लिखने लगे ।

जैसे 'प्रयोगवादी कविता', 'नई कविता', 'अकविता', 'विचार कविता', के आन्दोलन कुछ कवियों-आलोचकों ने विभिन्न समयों पर चलाये, वैसा कोई आन्दोलन दोहा छन्द के लिए नहीं चलाया गया, फिर भी हिन्दी में दोहे लिखे जाने लगे । इसके बढ़ते प्रचलन को देखकर कुछ पत्रिकाओं के दोहा विशेषांक निकले, पर किसी पत्रिका के दोहा विशेषांक से दोहों के लेखन का सूत्रपात नहीं हुआ । इसके पीछे निश्चित रूप से समकालीन कवियों की परिवर्तित मानसिकता काम कर रही थी ।

इस परिवर्तन का एक अन्य कारण सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन में छिपा है । बढ़ते हुए औद्योगीकरण और नगरीकरण के वरदानों के साथ कुछ अभिशाप भी आधुनिक मानव को मिले हैं । जीवनयापन के लिए निम्नवर्ग और मध्यवर्ग की जनसंख्या के जीवन-संघर्ष में वृद्धि हुई है और निरन्तर वृद्धि हो रही है । गांवों से निम्नवर्ग का शहरों की ओर प्रयाण रुका नहीं है । वह रोटी कमाने के लिए शहरों में आने के लिए विवश हैं । मध्यवर्ग का विस्तार शहरों में अधिक

हुआ है और इसी वर्ग से अधिकांश शिक्षित लोगों का सम्बन्ध है । तो जीवन-संघर्ष के अधिक सख़्त होने के कारण साहित्यिक रुचि के शिक्षित लोगों के पास इतना समय नहीं है कि वे महाकाव्य और प्रबन्धकाव्य में रुचि लें । शायद कवियों में भी इतना धैर्य नहीं कि वे महाकाव्य लिखें । इसी लिए हिन्दी में मुक्तक रचनाओं का प्रचलन हुआ ।

सामाजिक, आर्थिक,राजनीतिक विषमताओं के बढ़ते जाने से अनेक विसंगतियां और असंगतियां कवियों की दृष्टि में आईं, जिन पर टिप्पणी और व्यंग्य करना उनके लिए अनिवार्य हो गया । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए दोहा खूब काम आया । इन असंगतियों और विसंगतियों का अनुभव कवि को चिन्तन-मनन के बाद ही हो पाता है । जीवन और जगत के गहरे परिचय और वास्तविक अनुभवों से ही चिन्तन-मनन को बल मिलता है । मध्यकालीन कवियों के 'दोहों' में जीवन-जगत का गहरा ज्ञान परिलक्षित होता है । आधुनिक कवियों ने मध्यकालीन कवियों के समान नीतिपरक और उपदेशात्मक काव्य लिखने का बीड़ा नहीं उठाया, पर उन्होंने युगीन सत्य की दो टूक और बेबाक अभिव्यक्ति दोहों के माध्यम से अवश्य की । युगीन सत्य की व्यंजना ग़ज़ल, मुक्त छन्द तथा छन्दमुक्त रचनाओं में भी हुई, पर कम से कम शब्दों में उसे प्रस्तुत करने का कौशल दोहाकारों ने दिखाया ।

दोहा लिखने में कवि पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त होता है । जैसे ग़ज़ल का प्रत्येक शेर स्वतन्त्र है, वैसे ही प्रत्येक दोहा भी । दोहे के साथ यह जो स्वतन्त्रता जुड़ी है, वह महाकाव्य और खण्डकाव्य के लेखन में नहीं है । पर छन्द, लय, यति, तुकान्त का अनुशासन दोहे को पूरी तरह उच्छृंखल होने का अवसर नहीं देता । तो दोहे की सफलता छन्द, लय, यति, तुकान्त के निर्वाह और मितकथन में है । यह कोरा २४ मात्राओं वाली दो पंक्तियों का छन्द नही है । २४ मात्राओं का भी १३ व ११ मात्राओं में विभाजन है और १३ मात्राओं के बाद यति का होना, और अन्त में लघु व्यंजन का होना अनिवार्य है । तात्पर्य यह कि दोहे के साथ स्वतन्त्रता और अनुशासन दोनों बातें जुड़ी हैं । उर्दू में जमीलुद्दीन आली ने इन शर्तों का पालन अपने कई दोहों में नहीं कियाहै, पर निदा फ़ाज़ली ने इन का पालन करते हुए उर्दू में खूबसूरत दोहे लिखे हैं । हिन्दी के समकालीन कवियों में ज़हीर कुरैशी, चिरंजीत, देवेन्द्र शर्मा इन्द्र, सुधेश, सूर्यभानु गुप्त, दिनेश शुक्ल, हरीश निगम, वेद प्रकाश पाण्डेय, राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर', रामानुज त्रिपाठी, रोहिताश्व

अरथाना, शिवकान्त मिश्र, राधेश्याम शुक्ल आदि ने उत्कृष्ट दोहे लिखे हैं । सब दोहाकारों की सूची यहां देना सम्भव नहीं है ।

समकालीन कवियों के दोहों की एक विशेषता उनकी व्यंग्यात्मकता है । व्यंग्य आधुनिक हिन्दी कविता का प्रधान गुण हो गया है । मध्यकालीन हिन्दी कवियों के दोहे प्राय: नीतिपरक हैं, यद्यपि बिहारी जैसे श्रृंगारी कवियों ने उसमें प्रेम तथा सौन्दर्य की अद्वितीय प्रदर्शनी लगाई । आधुनिक दोहों का स्वर व्यंग्यात्मक अधिक है । व्यंग्य की मारक शक्ति परम्परागत छन्द का जीर्णोद्धार कर उसे नये युग की आवश्यकताओं का वाहक बना देती है । तब दोहा एक छन्द मात्र नहीं रहता, आधुनिक युग की मानसिकता का दर्पण बन जाता है ।

कुछ लोगों का कहना है कि दोहा एक पुराना और परम्परागत छन्द है, जो परम्परागत काव्यरुचि का ही सूचक है, पर समकालीन कवियों द्वारा लिखित दोहों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई छन्द अथवा काव्यरूप अन्तिम रूप से किसी युग विशेष का नहीं होता । पुराने छन्दों अथवा काव्यरूपों द्वारा नयी काव्य संवेदना व्यक्त की जा सकती है, और नयी काव्य-शैली के बावजूद कोई रचना हमें पिछले युग में खींचने वाली हो सकती है । कोई छन्द या काव्यरूप पुराना इसी अर्थ में होता है कि वह पुराने कवियों द्वारा अपनाया गया, पर उस पर पुरातन की छाप अन्तिम रूप से नहीं होती । पुराने छन्दों, काव्यरूपों, शैलियों का नये युग की आवश्यकतानुसार नया उपयोग हो सकता है । समकालीन हिन्दी कवियों ने नयी काव्य-संवेदना-सम्पन्न दोहे लिखकर यह सिद्ध कर दिया है दोहा जितना पुराना है उतना नया भी । किसी ज़माने में प्रेम व सौन्दर्य ग़ज़ल का प्रधान विषय हुआ करता था, पर कवियों ने उस के कथ्य और शिल्प का ऐसा विस्तार किया, कि ग़ज़ल आधुनिक जीवन के यथार्थ का दर्पण बन गई । इसी प्रकार दोहा पुराने ज़माने में भक्ति, नीति तथा श्रृंगार का माध्यम अवश्य रहा, पर समकालीन कवियों ने उसे आधुनिक जीवन का दर्पण बना दिया है । आज दोहे की यही प्रासंगिकता है । नये दोहों द्वारा सहज कविता निरन्तर पुष्ट हो रही है ।

-सुधेश

भूल सुधार

'सहज कविता' के अंक में मुख पृष्ठ पर प्रकाशित मुक्तक के रचयिता डॉ० कुंवर बेचैन के स्थान पर किसी अन्य का नाम छपने का खेद है । -सं०

मेघ बरसता सिंधु पर मरु की बुझी न प्यास
यह अनहोनी देखकर पर्वत हुआ उदास ।

खुली समय की मुट्ठियां झरा उम्र का रेत
दुख के धान उगा रहे आंसू डूबे खेत ।

रहे करोंड़ों चीखते, बच्चे, मिली न बूंद
शिव-प्रतिमा पर चढ़ गया, लाखों लीटर दूध ।

लमहा लमहा ज़िंदगी क़तरा-क़तरा प्यास
मिले ख़्वाब में भी हमें टूटे हुए गिलास ।

छांव छरहरी नीम की, बिछी खरहरी खाट
भरी दुपहरी जेठ की गहरी नींद निचाट ।

जब से सांसों में घुला पहले पहल गुलाब
नींदों पर पहरा लगा खिले न कोई ख़्वाब ।

कभी बिछा मैं दूब-सा, कभी उड़ा बन मेह
बदल-बदल कर देह मैं, आखिर हुआ विदेह ।

तारा टूटा रात में, टूटी हर उम्मीद
वह प्रकाश का पहरुआ, जल कर हुआ शहीद ।

नदियों की बांहों बंधे लहरों के तावीज़
पानी भी अब हो गया एक तिलिस्मी चीज़ ।

पुरवा संग उड़ती हुई घटा न आयी रास
उतरी सूखे कूप में मेरी अन्धी प्यास ।

कितनों ने जल से भरे अपने रीते पात्र
और न कोई जानता, जाने सागर मात्र ।

ओ बिजली के तार पर बैठे हुए कपोत
सींच रहे क्यों मृत्यु से निज जीवन का स्रोत ।

कांटों पर चलते हुए ये मख़मल के पांव
ले आये बरसात को अंगारों के गांव ।

जुगनू जिनसे खेलते कर मुट्ठी में बंद
बदरीली इस शाम, ने बुने मूंगिया छंद ।

मेरी बौनी अस्मिता ओ विस्तृत आकाश
तुम्हें बांधने के लिए खोल रही भुजपाश ।
पीले पीपल पात-सा पूरनिमा का चांद
घुस आया दालान में, खुली खिड़कियां फांद ।
वरक़-वरक़ फिर धूप की खुलने लगी किताब
तिनका-तिनका पढ़ रहा बूंद-बूंद तेज़ाब ।
झौंका एक समीर का आया था इस ओर
तब से तन-मन प्राण ये अब तक गन्धविभोर ।
कंचन कलश भरे हुए तरुण किरण अवदात
प्राची में ढुलका रही, जागो हुआ प्रभात ।
दिन ढलते ही शाम का खुलने लगा तिलिस्म
छायाओं में गुम हुआ, कहीं धूप का जिस्म ।
पथ पर कोई तरु न था, न थे जलाशय, कूप
सर पै मंडराती रही, चील-सरीखी धूप ।
मंदिर में जलता हुआ धुंधला एक चिराग
अंधियारे के जख़्म से रहा पोंछता दाग़ ।
नींद खड़ी खोले रही बंद हगों के द्वार
सपने आये रात भर नीले पंख पसार ।
उड़ते सायों के तले चंद अजनबी ख़्वाब
हौले-हौले रख गये कुछ रंगीन गुलाब ।
हमें चांदनी ने लिया बीच राह में लूट
ये सपने भी कांच के कहीं न जायें टूट ।
धीरे से चलिये यहां जाग न उठें, जनाब
तनहाई में सो रहे शीशे के ये ख़्वाब ।
रही देर तक देखती नज़र धूल की ढीठ
पांवों से घायल हुई पगडण्डी की पीठ ।
रक़्स कर रही तीरगी रुख़ पर डाल नक़ाब
रफ़्ता-रफ़्ता बज रहा टूटा हुआ रबाब ।
पत्थर से भी आइना कर लेता सौ बात
चाहे मिले जवाब में चोटों की सौगात ।

मैं लमहे भर को रुका जिस खंडहर के पास
उसकी महराबों तले दबा मिला इतिहास ।
जिन्हें विरासत में मिली आंसू की जागीर
उन आंखों से पूछ मत, ख़्वाबों की ताबीर ।

-देवेन्द्र शर्मा इन्द्र (साहिबाबाद, उ. प्र.)

भावों की लहरें उठें शब्द न देते साथ,
मन में मोती अनगिनत कौड़ी आती हाथ ।
कोने अंतरे में पड़े कितने दीप्त प्रवाल,
झालर जैसे झूलते संसद में शैवाल ।
काट मलाई खा रही काली बिल्ली रोज़,
उधर देखिये ग्वालिनों को सत्तू की खोज ।
फागुन आग लगा गया आये तन से आंच,
मन का सुआ पढ़ा हुआ लेता है ख़त बांच ।
शूकर जैसी ज़िंदगी, सन्तों सा उपदेश,
सुन्दर कैसे हो भला दुनिया का परिवेश ।
राजनीति के खेत में उगते भांग धतूर,
हरसिंगार चंदन हुए आज बड़े मजबूर ।
हम सब बनते जा रहे भीड़ तन्त्र के अंग,
हमें लीलती जा रही अन्धी एक सुरंग ।
सभी पार्टियां मस्त हैं खोकर अपना वेश,
गांधी प्रतिमा सा खड़ा चौराहे पर देश ।
ऊंचे शिक्षासदन में मचा हुआ हुड़दंग,
शिष्य बने वादक यहां गुरुजन बड़े मृदंग ।
आया युग दुविधा भरा हाथ लिए संत्रास,
टूक टूक निष्ठा हुई खण्ड खण्ड विश्वास ।
राजनीति की मांग में है काला सिन्दूर,
यति ही फूंक रहा जहां पत्नी को तन्दूर ।
'टेढ़े मेढ़े रास्ते', जीवन 'आधागांव',
'झूठा सच' है हो रहा ज्यों अंगद के पांव

देश दिख रहा है मुझे डांगर सा लाचार,
मस्त नोचने में सभी कुत्ते गिद्ध सियार ।

-वेद प्रकाश पाण्डेय (पड़रौना, उ. प्र.)

उठा नहीं जब तक गदा चला न जब तक तीर,
खींचा जाएगा सदा पांचाली का चीर ।
बस्ती बस्ती जल गई तन मन पर है घाव,
राख नहीं ठण्डी हुई फिर आ गया चुनाव ।

-रामहित चौरसिया (सुल्तानपुर, उ. प्र.)

कॉफी में डूबी सुबह, थकी-थकी सी शाम
भूल गये हम शहर में, आकर अपना नाम ।
मेरे मरने पर किया, प्रकट जिन्होंने खेद
उनके चाकू से मरा, खुला न अब तक भेद ।
चीलें मंडराने लगीं, खोल पंख औ पांव
तब आया यह समझ में, यह मुर्दों का गांव ।
डर कर कोटर में छिये, कुछ पक्षी बेनाम
जब बन्दूकों ने लिया, लोकतन्त्र का नाम ।
भूखे, गरीबी, वेबसी, दुर्दिन औ दुर्भाग्य
पंचरत्न हमको मिले, यही हमारा भाग्य ।
कलियां कांटों से करें, अब विवाह-सम्बन्ध
तलवारों ने तोय से, किया यही अनुबन्ध ।
बाहर जायें किस तरह, खोलें घर के द्वार
लिये संटियां हाथ में, हवा खड़ी तैयार ।
हमने अपनी उंगलियां, की कांटों को दान
जब फूलों ने कर दिया, इनको लहू लुहान ।
प्रेम, त्याग, बन्धुत्व, प्रण, गये मधुरता भूल
फटीजेब थी, खो गये, अपने सभी उसूल ।
थैली बायें हाथ थी, दायें में तलवार
वह खरीद कर ले चला, मुझे सरे बाज़ार ।

क्या जाने कब टूटकर, टुकड़े चुभें हज़ार
अपने चारों ओर हैं, शीशे की मीनार ।

-रामस्नेही लाल शर्मा 'यायावर' (फीरोज़ाबाद, उ. प्र.)

दर्द, घुटन, मजबूरियां, भूख, शोक, संत्रास,
मन में क्या क्या पल रहा अधरों पर चिरहास ।
वाणी औ व्यवहार में अब है कितना खोट,
घाव भरै तलवार का नहीं वचन की चोट ।
भव्य भवन के शीश पर करता सिहं निवास,
आंगन में बकरी बंधी रहती सदा उदास ।
देशकाल-परिवार की परम्परागत प्रीति,
धन वैभव के सिन्धु में डूब गई सब नीति ।
कैसे फूले फलेगी विश्वासों की बेल,
अविश्वास की भूमि पर राजनीति का खेल ।

-महेश दिवाकर (चांदपुर, बिजनौर, उ. प्र.)

ललचाये नैना फिरैं ढूंढ़ें साजन देश,
साजन घर में ही बसै नैन फिरैं परदेश ।
नैन बना ले आरती हृदय बना ले थार,
मन मन्दिर में देवता तू क्यों बैठी द्वार ?
हिण्डोला सा झूलना जीवन का व्यवहार,
आते जाते दुःख सुख पतझर और बहार ।
मन काजल की कोठरी तन बक रंग समान,
उथले जल में ढूंढता तू रत्नों की खान ।

-रामगोपाल परिहार (क्योंझर, उड़ीसा)

सज्जन सब दुबके, चले दुर्जन सीना तान,
दुर्जन को हलवा पुरी सज्जन को अपमान ।
देखो अपना चेहरा दर्पण मारै चोट,
दर्पण का क्या दोष है जब मुख में सौ खोट ।

राजनीति है कुटिलता नेता का व्यवसाय,
सौदा करके देश का बढ़ा रहे निज आय ।

-श्याम वृक्ष मौर्य (शिकोहाबाद, उ. प्र.)

ये बबूल की झाड़ियां नागफनी के पेड़,
मिल कर चन्दन वृक्ष की बखिया रहे उधेड़ ।
नगद खुशी तो ना मिली ग़म मिल गये उधार,
बंटवारे में मिल गई आंगन को दीवार ।
बोये खुशियों के नये कुछ संशोधित बीज,
जिनमें से पौधे उगे सब के सभी मरीज ।
कल थी जिन के पांव में फटी बिवाई पांच,
आज कर रहे भीड़ में वही भांगड़ा नाच ।
हत्याओं का व्याकरण लाशों का साहित्य,
बन्दूकों की गोलियां बांच रही हैं नित्य ।

-रामानुज त्रिपाठी (सुलतानपुर, उ. प्र.)

कुर्सी को मत छोड़िये चिपके रहिये यार,
राजनीति में हर जगह कुर्सी का व्यापार ।
मुखिया जी ने कर दिया सचमुच ग्राम सुधार,
जीप खरीदी पुत्र हित खुद लाये हैं कार ।
कैद युधिष्ठिर को हुई दुर्योधन खुशहाल,
शकुनि दण्ड हैं पेलते अर्जुन ठोकें भाल ।
सच्चाई की सेज पर गद्दे कांटेदार,
मिथ्या रानी कर रही फूलों का व्यापार ।
राजनीति के क्षेत्र में सब के सब हैं बीस,
वंशज हैं कुछ बालि के कुछ दिखते दससीस ।

-रोहिताश्व अस्थाना (हरदोई, उ. प्र.)

मोरपंखिया बांसुरी साधे बैठी मौन,
वंशीवट पर थिरक कर कालिय नाथे कौन ?
दफ्तर दफ्तर लूट है लूट सके तो लूट,
फाइल फाइल से बंधी रिश्वत चारों खूंट ।
काल खण्ड की शिला पर रचना बनी महान,

डूबी हुई विषाद में अधरों की मुस्कान ।
इस हेमन्ती राज का ऐसा बढ़ा अंधेर,
सोनचिरैया धूप उड़ फिरती छोड़ मुंडेर ।
राजघाट की लाश पर मंडराती जो चील,
सपनों के ताबूत में ठोक रही है कील ।

-शिवाकान्त मिश्र 'विद्रोही' (गोंडा उ. प्र.)

तुमने हमको क्या दिया अरी सदी बेपीर,
छुरी मुखौटे कैंचियां और विषैले तीर ।
मोती घोंघे सीपियां आंसू सपने पीर,
सब कुछ है संसार में मिले लिखा तक़दीर ।
धीरे धीरे सब गये छन्द और लय तान,
जीवन सी कविता हुई बेरोनक बेजान ।

-रामनिवास मानव (हिसार, हरियाणा)

वाद बहुत वादे बहुत बहुत बहुत गठजोड़,
सभी प्रजा की पीठ पर बेंत रहे हैं तोड़ ।
बस्ती बस्ती में लगा अपने हाथों आग,
खड़े समन्दर देखते गाते बादल राग ।
रो कर गा कर चीख कर चुप हो गई ज़मीर,
किन्तु जुल्म के माथ पर पड़ी न एक लकीर ।
रातें तैमूरी हुई दिवस बने चंगेज़,
वक़्त बना कल के लिए काला दस्तावेज़ ।
कितने गर्म सवाल हैं कितने सर्द जवाब,
खड़ी रिआया ठगी सी पर हंस रहा नवाब ।
रुचियां ओछी कर रहे कुछ थोथे लफ़्फ़ाज़,
कविताई के नाम पर गिरा रहे हैं गाज ।
कौशल्या खत जोहती दशरथ देखें बाट,
कंचन मृग के फेर में राम बिक रहे हाट ।
नहीं हुई परदेस की पूरी कभी मियाद,
'अब घर चल' कहती रही मुझे वतन की याद ।
दिन बंजारे हो गये मौसम हुआ फक़ीर,

रातें जोगिन बांचती खाली हाथ लकीर ।
औरत खुशख़त डायरी क़िस्से पुरुष प्रधान,
जिन्हें संजोये जी रही जिल्दों के दरम्यान ।
क्या अनुमाने वक्त तू हिरना मन की पीर,
किसी अहेरी हाथ का तू भी तीखा तीर ।
आठों याम मनौतियां सांस सांस आशीष,
अम्मां मन के आंगने जैसे पेड़ शिरीष ।
दंगे लाठी गोलियां अस्मत से खिलवार,
दिये तन्त्र ने प्रजा को ये कितने उपहार ।
सांझ ढले दिन दे गया ममता वाली पीर,
संझबाती में झिलमिली अम्मां की तस्वीर ।
घर-घर सीताएं तपें गलें पसीज पसीज,
मेंहदी के क्या मायने क्या सावन क्या तीज ।

-राधेश्याम शुक्ल (हिसार, हरियाणा)

दुःख के सागर बीच हैं सुख के छोटे द्वीप,
तिमिर लोक में जल रहे आशा के कुछ दीप ।
जिजीविषा दुर्दम्य है विजिगीषा दूर्मेय,
बारबार भी हार कर मानव अपराजेय ।
दो पग चलें, प्रहार में दोहे करें न देर,
उर्दू पर भी चढ़ गये ये हिन्दी के 'शेर' ।
भानु भरोसे दिन कटे आग भरोसे रात,
राम भरोसे ज़िंदगी है ग़रीब की ज़ात ।
छोटी रात बड़ी हुई मिला कन्त हेमन्त,
होने को आता नहीं उसके सुख का अन्त ।
लगा लुभाने जगत को रवि का कवि सा रूप,
कविता सी लगने लगी मधुर गुनगुनी धूप ।

-जगन्नाथ त्रिपाठी (गोंडा, उ. प्र.)

गधे पंजीरी खा रहे घोड़े खायें भूख,
कागा डूबा खीर में गई कोकिला सूख ।

कितनी पावन आत्मा कलुषित कितना पाप,
शब्द नहीं तो कर्म ही कह देते हैं आप ।
चाह मांग लड़ कर मिला तो क्या पाया मान,
अनचाहे मांगे बिना मिले वही सम्मान ।
चिड़िया बैठी डाल पर चाहे जब उड़ जाय,
माली का मन बावरा उपवन पै इतराय ।
किसलय केसर सेज पर खिली कली इतराय,
माली असमय तोड़कर मगर उसे ले जाय ।
बात ज़रा सी थी मगर अब क़िस्सा है बात,
नये ज़माने का चलन बात बात में बात ।
बतरस का लालच लगा बातों में से बात,
बातों बातों में मगर हो जाती है घात ।
खाने में ऐसा नशा मीठी आवै नींद,
रिश्वत हो या पूरियां हर दिन जैसे ईद ।
मन के जीते जीत यदि मन के हारे हार,
दुर्बल तन का कहां तक मन ढोयेगा भार ।
जीते पर ही जीत है हारे पर है हार,
जीते तो यौद्धा बड़े कायर पाई हार ।
हार गया तो क्या हुआ कब तक धुनना सीस,
जीता भी तो क्या हुआ काल न छोड़ै सीस ।
चलते चलते थक गया मिली न मन की राह,
जीवन की गति वाह है जीवन की यति आह ।
जगत नहीं, यह इन्द्रधनु कैसे कैसे रंग,
भीगा जब धूमिल गगन चमकी सृष्टि उमंग ।
तुलसी ने मानस लिखा वाराणसि के घाट,
यह गुटका गोरखपुरी देखो इस के ठाट ।
गद्दी पर कोई सजे शूकर हो या श्वान,
खड़े मिलेंगे हर जगह वे बन कर दरबान ।

-सुधेश

दोहा : एक लोकप्रिय छन्द

हिन्दी-छन्दों में 'दोहा' सर्वाधिक लोकप्रिय है । विषम चरणों में तेरह और सम चरणों में ग्यारह मात्राओं के गुम्फन से निर्मित इस छन्द के नाम की व्युत्पत्ति तथा इसके प्रकारों और प्रभेदों का आकलन एक स्वतन्त्र शोध का विषय है ।

'सोरठा' छन्द 'दोहा' का ही विलोम है, (अर्थात् सम चरणों में तेरह और विषम चरणों में ग्यारह मात्राएं) ये दोनों छन्द एक ही सिक्के के दो पहलू के समान है ('दोहा उलटे सोरठा'-भानु कवि) । गोस्वामी तुलसीदास ने इन दोनों छन्दों को 'सुन्दर' विशेषण से विभूषित किया है और इन्हें 'बहुरंग' भी कहा है : 'छन्द सोरठा सुन्दर दोहा, सोइ बहुरंग ...।' (रामचरितमानस, बालकाण्ड : ३६.३) 'दोहा' छन्द की बहु आयामिता के गम्भीर और व्यापक विवेचन के लिए कविवर जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के 'काव्य प्रभाकर' और 'छन्द - प्रभाकर' जैसे एतद्विषयक पार्यन्तिक और प्रामाणिक ग्रन्थ मननीय और मीमांस्य हैं ।

मूलत: 'दोहा' शब्द 'दोहन' से जुड़ा हुआ है । दोहे में जीवनोत्कर्ष - विधायक बातों तथा जनमानस को तत्क्षण प्रभावित करनेवाले शास्त्रवचनों के सार तत्वों का दोहन कर उनका निष्कर्ष या निचोड़ उपस्थापित किया जाता है । तभी तो कवि बिहारी के -

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल
अली कली ही सौं बंध्यो आगे कौन हवाल ।

-इस अन्योक्तिमूलक दोहे ने एक अल्पवयस्का के प्रति आसक्ति के कारण कर्त्तव्य पराङ्मुख जयपुर-नरेश जयसिंह को बिना मानसिक आघात पहुंचाये मानों झकझोरकर जगा दिया था । इस विवृति से 'दोहा' शब्द 'दोग्धा' का अधिक समीपी प्रतीत होता है ।

प्राकृत में 'दोहा' के स्थान पर 'गाहा' (=सं० गाथा) शब्द और अपभ्रंश में 'दूहा' शब्द है और संस्कृत में इसे हम 'अनुष्टुप' छन्द का समस्थानीय मान सकते हैं । प्रसिद्ध छन्दशास्त्री भानु कवि ने 'दोहा' के लक्षण में कहा है :

जान विषम तेरा कला, सम शिव दोहा मूल ।

अर्थात् विषम चरणों में तेरह और सम चरणों में ग्यारह (शिव) मात्राएं होती हैं और 'जा न विषम ' का तात्पर्य है कि पहिले और तीसरे (विषम) चरणों के आदि में जगण ही होना चाहिए तथा अन्त में लघु रहना आवश्यक है ।

जैसे :

श्रीरघुवर राजिव-नयन, रमारमण भगवान
घनुष बाण धारन किये, बसहु सु मम उर आन ।

जो छन्द, जैसे दोहा, सोरठा आदि, दो पंक्तियों में लिखे जाते हैं, उनकी प्रत्येक पंक्ति को 'दल' कहते हैं । इसी प्रकार 'चौपाई' के चार चरणों को दो पंक्तियों में रखते हैं और प्रत्येक पंक्ति 'अर्धाली' कही जाती है ।

दोहे की रचना करना आसान नहीं है । इसमें छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन करना अपेक्षित होता है । भानुकवि ने कहा है कि दोहे की रचना के लिए इस दोहे को याद रखना चाहिए :

जान विषम राख सरन 'अन्त सुसम है 'जात'
संकट तेरो शिव हरैं सुनि दोहा अवदात ।

इस दोहे का अर्थ द्वयाश्रयी है । पहला अर्थ है : महादेव ऐसे दयालु देवता हैं कि हम संसारी जीवों को अल्पज्ञ, अल्पशक्ति और अल्पमति जानकर अपनी शरण में रख लेते हैं और शरण में रखने का प्रभाव यह है कि विषम दशा नष्ट होकर समता, अर्थात् सुगति प्राप्त होती है । ऐसे शिव तुम्हारे सुन्दर दोहे को सुनकर सारे संकटों को हर लेते हैं । इस दोहे का पिंगल शास्त्रीय अर्थ इस प्रकार है : दोहे के विषम चरणों के आदि में जगण (लघु गुरु लघु = ।ऽ।) से रहित तेरह मात्राएं होनी चाहिए और अन्त में 'सरन', अर्थात् सगण (लघु लघु गुरु = ।।ऽ) या रगण (गुरु लघु गुरु = ऽ।ऽ) अथवा नगण (लघु लघु लघु = ।।।) रहना चाहिए । सम चरणों में ग्यारह मात्राएं इस प्रकार रहें कि उनके अन्त में 'जात', अर्थात् जगण (।ऽ।) अथवा तगण (गुरु गुरु लघु = ऽ ऽ।) हो । भानुकवि ने दोहे के सम और विषम चरणों की बनावट के बारे में बहुत सूक्ष्मता से विचार किया है ।

'दोहा' नाम के कारण पर विचार करते हुए भानुकवि ने लिखा है कि नियम के अनुसार दोहे के आदि में सम मात्रा के पीछे सम मात्रा (जैसे : 'राखो मोरी लाज' = चार सम मात्राएं और अनत में अनिवार्य गुरु लघु) और विषम मात्रा के पीछे विषम (जैसे : 'वेद ज पावहिं पार = क्रमश: एक गुरु दो लघु ; एक गुरु दो लघु और अनत में अनिवार्य गुरु लघु) का प्रयोग होता है । इसी कारण इसका नाम 'दोहा' है ; क्योंकि यह दुहरा - दुहरा चलता है और इसमें दो ही दल होते हैं । बिहारी कवि ने 'दोहा' को 'दोहरा' कहा भी है ।

सतसैया के दोहरे असनावक के तीर ।'

भानुकवि ने दोहे के विषम चरण के आदि में 'जगण' का पूर्ण निषेध किया है । यदि 'जगण' आ जाता है, तो उसे 'चण्डालिनी' दोहा कहते हैं :

जहां विषम चरणनि परै, कहूं जगण जो आन ।
बरवान ना चण्डालिनी, दोहा दुख की खान ।।

(छन्द प्रभाकर ; दोहा-प्रकरण)

यों तो दोहे के अनेक भेद होते हैं, परन्तु भानु कवि ने दोहे के मुख्य तेईस भेदों का आकलन किया है । जैसे: १. भ्रमर, २. भ्रामर, ३. शरभ, ४. श्येन, ५. मण्डूक, ६. मर्कट, ७. करभ, ८. नर, ९. हंस, १०, गयन्द, ११. पयोधर, १२. चल अथवा बल, १३. बानर, १४. त्रिकल, १५. कच्छप, १६. मच्छ, १७. शार्दूल, १८. अहिवर, १९. व्याल, २०. बिडाल, २१. श्वान, २२. उदर और २३. सर्प ।

'सर्प' एक ऐसा दोहा है, जिसमें अड़तालीसों (२४+२४) वर्ण लघु होते हैं । जैसे :

अरुण चरण कलिमलहरण, भणतहिं रह कछु भयन
जिनहि नवत सुर मुनि सकल, किन भज दधिसितसयन ।

इसमें, अन्त में अनिवार्य गुरु-लघु का भी निषेध है । इसी प्रकार, 'उदर' संज्ञक दोहे में केवल एक गुरु रहता है और शेष सारे वर्ण लघु होते हैं । उदाहरणार्थ :

कलुषहरण भवभयहरण, सदा सुजन सुख अयन
मम हित हरि सुरपुर तजिय, सुधनि धनि कमलनयन ।

ज्ञातव्य है, ऐसे दोहे ('सर्प' और 'उदर' संज्ञक) बहुत कम पाये जाते हैं । इस प्रकार की दोहा - रचना के प्रति भानुकवि की सहमति नहीं है । हां, यदि अन्त के 'अयन', 'बयन', भयन' और 'सयन' को 'ऐन', 'नैन', 'भैन' और 'सैन' लिखा जाय, तो अन्त में अनिवार्य गुरु-लघु का प्रयोग होने से ऐसे दोहे स्वीकार्य हैं ।

तुलसी-कृत रामायण में कहीं-न कहीं विषम चरण बारह मात्राओं के भी पाये जाते हैं । जैसे : 'तात चरण गहि मांगौ' । परन्तु यह दोष पाठान्तर का है, तुलसीदास जी का नहीं । किसी किसी कवि ने ऐसे दोहों को भी प्रामाणिक मानकर उनका नाम 'दोहरा' रखा है । 'दोहरा' शब्द दोहे का ही पर्यावाची है ।

-डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव (पटना, बिहार)

नया दोहा : नये प्रसंग

वैदिक संस्कृत से लेकर हिन्दी भाषा के आधुनिक स्वरूप तक विभिन्न कालों में विकसित होने वाली भाषाओं के भीतर जहां एक पूर्वापर और जनक जन्य सम्बन्ध लक्षित होता है वहां उनकी युगपत् सहवर्त्तिता के भी अनेकश: प्रमाण लक्षित होते हैं । पूर्वतन भाषा के काव्यविषय, अभिव्यंजना शिल्प, अलंकार विधान, काव्यरूढ़ि और छन्दोविन्यास को परवर्ती भाषा के काव्य में यत्किंचित् परिवर्त्तन के साथ सुरक्षित रखा गया है । विभिन्न भाषाओं और उनके साहित्य-सम्पद् में इसी प्रक्रिया के माध्यम से एक परम्परा अपना सुदृढ़ और अक्षुण्ण आकार ग्रहण करती है । ये सामान्य नियम और स्थितियां दोहे पर भी पूर्णत: लागू होती हैं । कालिदास, सरहपा, कण्हया, जोइन्दु, स्वयम्भू, रामसिंह, धनसिंह, धनपाल, अछहमाण, हेमचन्द्र, पुष्पदन्त से लेकर शार्गधर, मेरुतुंग और विद्यापति ठाकुर तक जहां दोहे ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अपने वागर्थ-वैभव का विस्तार किया वहां सूर, तुलसी, जायसी, रहीम, बिहारी, मतिराम और पद्माकर जैसे सहस्राधिक मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने भी मुक्त रूप से अपनी कृतियों में दोहे को भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । आधुनिक युग तक आते-आते अन्यान्य कवियों ने जहां अनेक अभिनव मात्रिक छन्दों का आविष्कार किया वहां यदा-कदा दोहे के क्षेत्र में भी नये-नये प्रयोग किये । कहने का अभिप्राय यह है कि दोहा छन्द का इतिहास हज़ारों वर्ष पुराना है और अपवाद स्वरूप कुछ भाषंओं के अतिरिक्त प्राय: सभी भारतीय भाषाओं के कवियों द्वारा इस छन्द का प्रयोग किया गया ।

दोहे की इस असामान्य लोकप्रियता की पृष्ठभूमि में सबसे प्रमुख कारण रहा है दोहे जैसे दो पंक्तियों के छोटे से छन्द में, कम-से-कम शब्दों के द्वारा बड़े-से बड़े वक्तव्य विषय का समाहार । ब्रह्म के समान दोहा भी अपने-आप में 'अणोरणीथान्' और महतोमहीयान्' है । गागर में सागर भरने की परम्परागत लोकोक्ति दोहे पर सर्वात्मना चरितार्थ होती है । रचनाशिल्प की दृष्टि से दोहा-लेखन जितना सरल और सुकर है, उतना ही जटिल और दुष्कर भी है । यही कारण है कि आज जब हज़ारों की संख्या में लोग दोहा लिखने के पीछे पड़ गये हैं तब तुलसी, कबीर, बिहारी, मतिराम और रहीम के दोहों की टक्कर के दोहे वे कम ही लिख पा रहे हैं । प्रभविष्णुता, स्पर्शिता, मारकता और वेधकता के निकष पर अभी वे पुराने दोहों के समकक्ष नहीं हो पाये हैं । इसका तात्पर्य यह कदापि

नहीं है कि नया दोहा इन गुणों से वंचित अथवा विवर्जित है । इसके कारण अन्यत्र खोजने पड़ेंगे । आज युग, परिस्थितियां, सन्दर्भ और जीवन तथा चिन्तन के धरातल बदल गये हैं । न आज कबीर, जायसी और तुलसी जैसे महिमामण्डित रचनाकार रहे और न उनकी जैसी प्रभावोत्पादक पारदर्शिनी वाग्मिता ; न आज मिर्जा राजा जयसिंह जैसे गुणग्राही आश्रयदाता रहे और न ही बिहारी जैसे व्यक्तित्व के दोहाकार । महाप्राण साधु-सन्तों की सर्वमान्यता के सम्मुख आज प्रश्नचिन्ह लगाये जा रहे हैं और राजनेताओं तथा फिल्मी अभिनेताओं को आप्तता प्रदान की जा रही है । जीवन-मूल्यों और संस्कृति तथा सौन्दर्य-बोध के पूर्वस्वीकृत आदर्श आज जिस त्वरित गति से धराशायी हो रहे हैं उस अनुपात से आज साहित्य और साहित्यकार अपनी अस्मिता के महत्व को दर्ज नहीं कर पा रहा । कविता, साहित्य और समाज में आज सर्वत्र ही छद्म का बोलबाला है । छद्म साहित्यकार को साहित्य अथवा कविता की प्रगति या उत्कर्ष से कोई लेना-देना नहीं है । उसकी दृष्टि पद, पुरस्कार और प्रचार-प्रसार की प्रतिष्ठा के आगे दो क़दम दूर तक भी नहीं देख पाती । जन सामान्य (जिसकी बार-बार हितैषिणी-घोषणा के अभिनय ये छद्म साहित्यकार करते है) भी अब इस छद्म साहित्य से आकृष्ट होने की अपेक्षा अपने मनोरंजन, प्रेरणा, शिक्षा और कालयापन के लिए अन्यतर आलम्बनों की खोज कर चुका है । उसे न 'कालिदास', 'तुलसी' ,'निराला' और 'मुक्तिबोध' से कोई सरोकार है और न छन्दमुक्त नयी कविता के प्रति कोई आसक्ति । घोड़े और गधे सभी उसके लिए अपनी-अपनी प्रासंगिकता खो चुके हैं । ऐसी अहमहमिका भरे प्रदूषित परिवेश में निश्चय ही दोहे को अपनी 'अस्मिता' बनाने के लिए जी तोड़ संघर्ष करना होगा । संभव है , कि किसी चमत्कार के तहत यदि नया दोहा पाठ्यक्रमों में शामिल कर दिया जाये तो कबीर, तुलसी और रहीम-बिहारी के दोहों की भांति वह भी जनग्राह्य हो जाये ।

परिस्थितियां और वातावरण चाहे अनुकूल रहे चाहे प्रतिकूल लेखन-कर्म का क्रम तो अपनी रीति से निरंतर चलता ही रहता है । एक ही समय में जब अधिकांश रचनाकार कविकर्म में रत होकर सामान्य स्तर की रचनाएं कर रहे होते हैं तब कुछ प्रतिभाशाली जन परम्परा-पेषण करने की अपेक्षा कुछ नया और मौलिक भी सिरजने के लिए उद्युक्त होते हैं । दोहा-लेखन की दिशा में भी इस प्रवृत्ति के दर्शन किये जा सकते हैं । आज जहां सैकड़ों कवि एकाएक दोहा लिखने में व्यस्त हैं, वहां कुछ ऐसे भी विशिष्ट दोहाकार हैं जो कथ्य के स्तर पर उनसे

सर्वथा अलग देखे जा सकते हैं, जिन्होंने अपने दोहों में सम्प्रेष्य वस्तु को सर्वथा नये और अनछुए विम्बों और प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है तथा दो पंक्तियों और चौबीस-चौबीस मात्राओं की जकड़बन्दी को भाषा एवं अभिव्यक्ति के नये-नये मूहावरों की सहायता से एक ताज़गी प्रदान की है । कुछ दिनों पूर्व 'धर्मयुग' ने (डॉ० धर्मवीर 'भारती के सम्पादकत्व में सर्वश्री कैलाश गौतम, सूर्यभानु गुप्त, दिनेश शुक्ल, कैलाश सेंगर और संभवत: हरीश निगम तथा हस्ती मल 'हस्ती आदि रचनाकारों के माध्यम से) नये दोहों को सामने लाने की पेशकश की थी । उन दोहों में न तो कबीर और तुलसी के दोहों के जैसी उपदेशात्मकता थी, न उनमें बिहारी, मतिराम और पद्माकर के दोहों की भांति नायिकाभेद अथवा नख-शिख वर्णन प्रसतुत किया गया था और न ही समसामयिकता एवं आधुनिकता के नाम पर सपाट बयानी के ज़रिये अखबारी घटनाओं का अनुवाद किया गया था । यह सब कुछ होते हुए भी उन दोहों में बहुत कुछ ऐसा था कि वे नवगीत और ग़ज़ल की ख़ासी समकक्षता कर सकते थे । यह भी एक संयोग की बात है कि तब तक मैंने स्वयं एक भी दोहा न लिखा था । उन्हीं दिनों मेरे सुहृद श्री पाल भसीन ने भी दोहा लिखने की आज़माइश की, जिसके फलस्वरूप उनका एक दोहा संग्रह-'अमलतास की छांव' -प्रकाशित हुआ । फिर उसी क्रम में आया दिनेश शुक्ल का संग्रह -'पानी की बैसाखियां' । तभी मेरे मन में अचानक एक आकांक्षा उत्पन्न हुई कि नये दोहाकारों का एक समवेत संग्रह क्यों न निकाला जाये, और इस प्रकार 'सप्तपदी' की योजना अस्तित्व में आयी । मैंने कुछ दोहाकारों के सम्मुख जब यह प्रस्ताव रखा तो वे सभी एकस्वर से सहमत हो गये और उनमें से छ: की सामग्री भी मेरे पास यथासमय आ गयी । सातवें सहयोगी की ओर से जब मुझे कुछ असहयोग की आशंका हुई तब मुझे लगा कि 'सप्तपदी' की योजना कहीं खटाई में न पड़ जाये तो मैंने स्वयं इस दिशा में प्रयास किया । 'सप्तपदी-१'की पाण्डुलिपि जिस समय प्रकाशक को दी जानी थी उस समय तक मैं भी बहुत से दोहे लिख चुका था किंतु तभी पूर्वप्रस्तावित सातवें सहयोगी के दोहे भी आ गये और पूर्वनिर्णय के अनुसार मै ने उनके दोहों को पाण्डुलिपि में शामिल करते हुए अपने दोहों को 'सप्तपदी-२' के आने तक स्थगित कर दिया । यह प्रसन्नता की बात है कि इन पंक्तियों के लिखे जाते समय तक 'सप्तपदी-४' के आने की पूर्ण संभावना हो चुकी है और मैं शीघ्र ही 'सप्तपदी-५' की सामग्री एकत्र करने जा रहा हूं । 'सप्तपदी' के प्रत्येक खण्ड में मैंने सात-सात नये दोहाकारों का चयन और उनमें से प्रत्येक के १०१ दोहों का

समाकलन किया है । आशा है कि 'सप्तपदी' सातवें खण्ड तक छप कर अपना नाम सार्थक कर सकेगी । यदि मेरे इस कथन पर आत्मविज्ञापन का आरोप न लगाया जाये तो मैं अत्यन्त विनम्र स्वर में यह कहना चाहूंगा कि अब तक मेरे अपने दोहे भी पांच हजार की संख्या तक पहुंच चुके हैं । 'सप्तपदी' के और अपने दोहों के बारे में यह सब कहने के पीछे मेरी मंशा यही है कि अब नया दोहा देश के विभिन्न दूरवर्ती क्षेत्रों में लिखा जा रहा है और परिमाण की दृष्टि से भी उसे परम्परागत दोहे से पीछे नहीं कहा जा सकता ।

प्रसंगवश मैं यहां यह भी निवेदन करना चाहूंगा कि प्रारंभ में मेरे कतिपय नवगीतकार बन्धुओं ने इस बात को लेकर उपहास और चिन्तापूर्ण आपत्ति भी व्यक्त की थी कि मैं दोहे के रूप में नवगीत के सम्मुख एक और प्रतिस्पर्धी विधा को प्रस्तुत करने जा रहा हूं । उनका ऐसा मानना था कि मंचीय परम्परामुक्त गीत, नयी कविता और ग़ज़ल की भांति दोहा भी नवगीत के सहज विकास क्रम में बाधक बन जायेगा । मेरा उन मित्रों से तब भी मतान्तर था और आज भी है । मैं किसी एक विधा को दूसरी विधा का प्रतिस्पर्धी नहीं मानता । रचनाकार में यदि सर्जनात्मक क्षमता है तो वह एक ही समय में एकाधिक विधाओं में समान सफलता के साथ रचना कर सकता है । क्षमता के अभाव में आप किसी एक विधा में भी नही लिख सकते । प्रसन्नता का विषय है कि आज 'दोहा' एक छन्छमात्र न होकर एक सम्पूर्ण विधा का रूप ग्रहण कर चुका है । पत्र-पत्रिकाओं में आये दिन एक से एक श्रेष्ठ नये दोहों का प्रकाशन होने लगा है । स्वतंत्र पुस्तकों के रूप में भी दोहा-संग्रहों के छपने का सिलसिला चल निकला है । प्रारंभ में मैंने जिन नामों का उल्लेख किया था उनके अतिरिक्त आज दर्जनों नया और बेहतर दोहा लिखनेवाले लोग हमारे सामने हैं ।

अन्ततः मैं पुनः अपनी इस बात को साग्रह दोहराता हूं कि पुराने और नये दोहे में भेद करनेवाले सलीक़े को हमें सदैव जाग्रत् और सचेष्ट रखना होगा । अभी जान बूझकर मैंने उन दोहाकरों और दोहासंकलनों का उल्लेख नहीं किया है जिन्हें किसी भी दृष्टि से नया दोहाकार अथवा नया दोहा कहने से पूर्व हमें कई बार सोचना पड़ेगा । संकेत रूप में अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए पुरानी शैली और नयी शैली में लिखे गये दो-दो उदाहरण देकर इस प्रसंग को फिलहाल यहीं समाप्त करना चाहता हूं -

(क) परहित चिन्तन साधु का होता सहज स्वभाव

है असाधु की प्रकृति में छल, परअहित, दुराव ।
इन्दुर वाहन ! आपका, सिन्धुर वदन निहार
त्रस्त न करते भक्त को, विघ्नों के मार्जार ।

(ख) सन्नाटा कांधे धरे, कापालिक-सी रात
शव-सा निकला चन्द्रमा, किससे करता बात ।
तम्बू उखड़े धूप के, पथरा गयी थकान
ढीली प्रत्यंचा लिये, दिन की झुकी कमान ।

-देवेन्द्र शर्मा इन्द्र (साहिबाबाद, उ० प्र०)

दोहे की प्रासंगिकता

विगत कुछ वर्षों से दोहा फिर से हिन्दी का लोकप्रिय छन्द बन गया है । यों दोहा कहते ही प्राचीनता का बोध पनपता है, परन्तु इधर दोहे ने कथ्य और शिल्प के क्षेत्र में जो नयी ज़मीन तोड़ी है, उसने उसे ग़ज़ल का प्रतिद्वन्द्वी बना दिया है । कथ्य का नितान्त नवीन तेवर, भाषा का लाघव, वक्रोक्ति का चमत्कार पूर्ण प्रयोग ऐसे गुण हैं जो दोहे को सार्थक छन्द के रूप में प्रतिष्ठित कर रहे हैं । यह अनायास नहीं है कि 'नई कविता' ने विवश होकर जिन जटिल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में छन्दोबद्ध रचना को असमर्थ मानकर छन्दमुक्ति का अपेक्षाकृत सरल पथ अपनाया था, उन्हीं विषयों पर दोहों में सफल अभिव्यक्तियां मिल रही हैं । सामाजिक विषमता, राजनीतिक विद्रूपता, व्यक्तित्व का विघटन, महानगरीय जीवन की त्रासदियां, औद्योगीकरण के दुष्प्रभाव, एक मूल्यहीन समाज में जीने की त्रासदी, हर उचित मूल्य के अवांछनीय होते जाने की यातना, भीड़ के बीच का अकेलापन, यान्त्रिकता के हाथों विवश मानव की नियति आदि कुछ भी तो ऐसा नहीं जिसे दोहे ने अपना कथ्य न बनाया हो । कुछ दोहों पर दृष्टिपात करके इस तथ्य को समझा जा सकता है :-

लोग समझते भूख से घर बनता बाज़ार,
बंगलों में कोठे खुले बोल रहे अख्बार ।

(भगवान दास एजाज़, 'शिल्प' का दोहा अंक, अगस्त १९९४)

है अभाव महंगी बिके अधरों की मुस्कान,
चलो शहर में खोल लें चल कर एक दुकान ।

(रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' वहीं पृ० २२)

नेता के दो रूप हैं देखे जग साक्षात,
निर्वाचन के पूर्व में निर्वाचन पश्चात ।

(सुबोध चन्द्र शर्मा नूतन-'नूतन दोहावली पृ० ८५)

आज दोहा पुन: लोकप्रिय क्यों हो रहा है ? कारण अनेक हैं । सम्मिलित परिवार टूट गये हैं । इच्छाओं का आकाश विस्तृत हो गया है, किंतु प्रयासों के हाथ निरन्तर छोटे हो रहे हैं । राजनीति में जातीय संगठनों का दौर चल पड़ा है । हमारे बौने हाथ अब महाकाव्यों और खण्डकाव्यों को न रच पाते हैं और न उनके आस्वादन की मानसिकता रह गई है । काव्य में क्षण की अनुभूति को व्यक्त करने में सक्षम स्वतन्त्र छन्द लोकप्रिय हो रहे हैं । दूसरा कारण है कि जीवन में अब जटिलता बढ़ रही है । अनुभूतियां संकुल हो रही हैं । पुरातन मूल्यों के खण्डहर पर पनपती यह नयी मानवता अपनी अभिव्यक्ति के लिए नये मार्गों की खोज कर रही हैं । वही छन्द आज सार्थक हो सकते हैं जो वक्रोक्ति के पथ पर चल कर आज की इस जटिलता भरी संकुल स्थिति और संवेदना को प्रकट कर सकते हैं । दोहे में यह सामर्थ्य है । रहीम के शब्दों में दोहे का अर्थ समझें तो

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोड़े आंहि,
ज्यों रहीम नर कुण्डली सिमिट कूटि चलि जांहि ।

दोहा प्राचीन छन्द है । संस्कृत में उसकी संज्ञा 'दोग्धक' है, जिस का अर्थ है 'चित्त का दोहन करने वाला' । दूसरा अर्थ है वर्ण्य विषय का सारतत्व दुह कर प्रस्तुत करने वाला । परन्तु आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी इसे संस्कृत छन्द नहीं मानते । उनके अनुसार नाट्य शास्त्र में उकार बहुला भाषा को आभीरों से सम्बद्ध कहा गया है । वह भाषा अपभ्रंश थी । उनका कहना यह भी है कि "सोरठा का सम्बन्ध सौराष्ट्र से जोड़ा गया है, क्योंकि इसे सौरठ्ठा दोहा भी कहा गया है और आभीर गुर्जरों का सौराष्ट्र से पुराना सम्बन्ध है ।" उन का मानना है कि शायद दोहा प्रथम तुकान्त छन्द है । दोहे के वर्तमान रूप का विकास धीरे धीरे हुआ है । प्रारम्भ में केवल समचरणों में ही मात्राओं की एकरूपता थी, विषमचरणों में १२ से १६ तक मात्राएं होती थीं । दोहे के सर्व प्रथम लक्षण 'प्राकृत पैंगलम्' (१४वीं शती) में मिलते हैं । इसके अनुसार वह १३+११ ; १३+११ (४८ मात्राओं) का छन्द माना गया है । वहां इसके २३ भेद किये गये हैं । दोहे की यह बनावट और बुनावट ही उसे कसावट देती है और कवियों को बाध्य करती है कि वे भाषा

का संयम और समर्थ प्रयोग सीखें । आकार की लघुता कवियों को वक्रोक्ति का प्रयोग करने को भी बाध्य करती है, क्योंकि ऐसा किये बिना कथ्य को छन्द की सीमा में समेटा नहीं जा सकता ।

पिछले वर्षों में दोहों के कई संकलन सामने आये हैं । पत्रिकाओं में दोहों को स्थान मिलना प्रारम्भ हुआ है और कई पत्रिकाओं ने 'दोहा विशेषांक' प्रकाशित किये हैं । इससे भी दोहे की प्रासंगिकता स्वतः प्रमाणित हो जाती है ।

-डॉ० रामसनेही शर्मा 'यायावर' (फीरोज़ाबाद उ. प्र.)

आज की कविता : सहज कविता

आज की कविता पर विचार करने पर यह तय करना कठिन हो जाता है कि कविता क्या हो, अथवा जनप्रिय कविता क्या हो ? यह तो निर्विवाद है कि छायावाद के बाद कविता वादों के भंवर में फंस कर सम्प्रेषणहीन ही नहीं हुई, बल्कि जनता से भी कट गई । साठोतरी कविता में अनास्था और आक्रोश की आड़ में मात्र कबाड़ का ढेर लगाया गया । इसी कारण, यदि इस काल -खण्ड को कविता-इतिहास का अंधकार का काल मान लिया जाए, तो कोई अत्युक्ति न होगी । इस दौर में कविता का नारा निरन्तर बदलता रहा, किन्तु कविता का वास्तविक स्वरूप जनता के सामने नहीं आ पाया । इस दौर में काव्यान्दोलनों के लगभग दर्जन नाम प्रकाश में आये, किन्तु स्वयं कवियों और उनके प्रशंसक आलोचकों तक ही सीमित रह कर अस्तित्वहीन हो गये । इन काव्यान्दोलनों में आज मात्र नई कविता,नवगीत और 'सहज' कविता की ही चर्चा है ।

नवगीत-काव्यान्दोलन के एक प्रमुख हस्ताक्षर डा० रवीन्द 'भ्रमर' ने सन् १९६८ में 'सहज कविता' के नाम से एक काव्य-संकलन का सम्पादन किया । सहज कविता के प्रकाशन के पूर्व काव्य-गोष्ठियों में डा० भ्रमर ने कविता में क्लिष्टता और दुरूहता को त्याग कर, सहज की भरपूर वकालत की थी । 'सहज कविता' के प्रकाशन को अनेक विद्वानों ने हिन्दी-कविता की यथार्थ वापसी माना । इनमें आचार्य नंददुलारे बाजपेयी, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, कुंतल कुमार जैन और रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि हैं । आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने सहज कविता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि -'हमारे कवि इधर उन्मुख हों तो अच्छा है । काव्य-रचना कठिन कर्म है । अनुभूति और अभिव्यक्ति की सहजता के बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती । कृत्रिम हो वह आरोपित अनुभूति के स्तर

पर जब प्राय: गूढ रूप में प्रतिफलित होती है, तब काव्य का मूल उद्देश्य ही खण्डित हो जाता है । डा० रवीन्द्र भ्रमर ने सहज कविता के रूप को स्पष्ट करते हुए 'सहज कविता' (सम्पादित-काव्य संकलन) की भूमिका में लिखा है कि 'यह जो सहज की मांग है, सरलता या सुविधा की मांग नहीं है । इसे युग-जीवन की जटिलता और सन्दर्भों से पलायन मान लेने की धारणा पूर्वाग्रह युक्त अवैज्ञानिक होगी । रचनागत वैशिष्ट्य में सहज का दायित्व है, जो अपने आप में कला-साधना का प्रतिमान बनता है ।'

वादों-विवादों के मध्य 'सहज' कविता की आवाज़ सन् १९८० के बाद हर ओर से उठने लगी और यह प्रश्न उठाया जाने लगा कि आज की कविता जनता में लोकप्रिय क्यों नहीं हो रही है ? यदि इस प्रश्न पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करें, तो तथ्य सामने आ जाता है कि सम्प्रेषणीयता के अभाव में हिन्दी कविता जनमानस से कट कर कुछ स्वयंभू आलोचकों तक ही सीमित रह गयी थी । एयरकंडीशंड कमरे में बैठ कर ये आलोचक भारत की गरीबी ही नहीं, जनतांत्रिक ढांचा सुधारने की कल्पना कर लेते हैं और पारदर्शी शीशे की तरफ़ से अपना जनवादी फार्मूला उड़ेल देते हैं । वे यह समझते हैं कि साहित्य या समाज का सबसे बड़ा हित वे ही कर रहे हैं, किन्तु आज की नई पीढ़ी इस बात को अच्छी तरह समझ रही है कि इन तथाकथित ओलाचकों ने हिन्दी-साहित्य का इतना अधिक अहित किया है कि उसकी भरपायी भविष्य में शायद ही हो पाये । इन्हीं कुछ छद्म कवियों और आलोचकों के कारण हिन्दी-कविता सम्प्रेषणीयता के अभाव में प्राय: शुष्क, नीरस और गद्यात्मक बनकर रह गयी है ।

किन्हीं कारणों से 'सहज कविता' का दूसरा खंड (रवीन्द्र भ्रमर द्वारा सम्पादित) प्रकाशित नहीं हो पाया । किन्तु, दिल्ली, अलीगढ़ और बनारस की गोष्ठियों में 'सहज कविता' की आवाज़ बराबर उठती रही । इस आवाज़ का ही परिणाम था -डा० सुधेश (दिल्ली) द्वारा सन् १९९४ से 'सहज कविता' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन । अब तक इसके दस अंक प्रकाशित हो चुके हैं और इसका व्यवस्थित ऐतिहासिक रूप भी स्पष्ट हो चुका है । प्रत्येक अंक में कविता से संबंधित उसके सैद्धांतिक और कलात्मक पक्षों पर गम्भीरता से विचार किया गया है, जिनमें 'सहज कविता' की आवश्यकता, सहज कविता की भाषा, छंद, लय, कला, ग़ज़ल, दोहा आदि प्रमुख हैं । 'सहज कविता' के प्रथम अंक में 'सहज कविता की आवश्यकता 'शीर्षक से डा० सुधेश ने लिखा है कि -'पिछले कुछ दशकों की हिन्दी

कविता पर दृष्टि डालने से यह बात साफ दिखायी देती है कि कविता के घटाटोप में कृत्रिम कविता अधिक लिखी गयी और सहज, स्वाभाविक, सही और वास्तविक कविता कम ही लिखी गयी । ...साहित्य-लेखन में हृदय और बुद्धि का बंटवारा करके नहीं चला जा सकता । ...कुछ स्वनामधन्य साहित्यिक पत्रिकाएं, सम्पादकों के गुटों से जुड़े कवियों को बराबर उछालती रहीं । व्यावसायिक पत्रिकाओं में मध्यवर्ग की रुचियों को तुष्ट करने वाली प्रेम कविताएं या शाकाहारी क़िस्म की अहिंसक कविताएं छपती रहीं , या उनमें मध्य वर्ग को परेशान करने वाले प्रश्नों को उछाला जाता रहा । ...आज हिन्दी में कविता लिखना बहुत आसान मान लिया गया है । जिन्हें हिन्दी भाषा की प्रकृति का भी ज्ञान नहीं है, छंद और लय का ज्ञान नहीं है, जिनके पास न पर्याप्त शब्द-भण्डार है, और न अनुभव की पूंजी, वे कैसे भी शब्दों को जोड़-तोड़ कर उसे कविता घोषित कर देते हैं । इसलिए आज हिन्दी कविता में छद्म कवियों ने कविता और गद्य के भेद को मिटा दिया है । आज हिन्दी-कविता की अलोकप्रियता का एक बड़ा कारण उसकी गद्यात्मकता है, ऐसी गद्यात्मकता, जिसमें न गद्य की स्पष्टता और तार्किकता है और न कविता की लय और अभिव्यंजना की सहजता तथा सम्प्रेषणीयता । ...इसलिए मेरा विचार है कि आज हिन्दी में सहज कविता की बड़ी आवश्यकता है, अथवा कविता में सहजता अपेक्षित है ।'

छंद की वापसी के बिना कविता में सहजता और सम्प्रेषणीयता नहीं आ सकती है । 'राग' कविता का प्राण-तत्व है । राग से कविता में लयात्मकता आती है और लय से कविता में प्रवाह आता है । प्रवाहहीन साठोत्तरी कविता में मात्र नवगीतों ने ही जनमानस को प्रभावित किया, क्योंकि वे छन्द को लेकर चले । कविता तुकांत हो अथवा अतुकांत हो, अगर उसमें प्रवाह है, सहजता है, रागात्मकता है, तो वह 'सहज कविता' है । महाप्राण कवि निराला ने कविता में छंदों के बंधन को तोड़ा ज़रूर, काव्यात्मक प्रवाह और लय को कभी भी खंडित नहीं होने दिया । इसलिए वे आज भी ज़िंदा हैं । छयावाद के बाद हज़ारों कवि आये और हाशिये पर लगते गये । दो-चार को छोड़कर आज उनका नाम लेने वाला भी नहीं है । इस दृष्टि से निश्चित ही सहज कविता का एक भविष्य है । किन्ही रूढ़-परम्परागत अर्थों में 'सहज कविता' को सपाट बयानी नहीं माना जा सकता है, क्योंकि सपाट बयानी सम्प्रेषणहीनता और गद्यात्मकता के अधिक नज़दीक होती है ।

आज का समय निश्चित ही सहज कविता का है, क्योंकि इसमें न तो किसी प्रकार का ढकोसला है और न ही विदेशी आयातित नंगापन । कविता के नाम पर बुझउवल और पहेली भी नहीं है 'सहज कविता' । 'सहज कविता' में जो कुछ भी है, अपने ही परिवेश का यथार्थ है । 'सहज कविता' किसी वाद या सीमा में बंधी हुई नहीं है । इसका आयाम इतना विस्तृत है कि परिवेश का हर कोना इसमें समाया हुआ है । कवि वेदप्रकाश 'अमिताभ', अगर आर्थिक शोषण की अभिव्यक्ति करते है -

'आधी सदी काट दी उसने, खाकर चना चबेना जी ।
मेहनत उसकी मौज तुम्हारी, यह सब और चले ना जी ।।

(सहज कविता : अंक-१)

तो कवि अंजनी कुमार दुबे 'भावुक' आज के परिवेश में बढ़ती हुई अजनबीयत को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि -

'आज अजनबी-सा, सहमा-सहमा मन है ।
कब हमदर्दी, लौटेगी अपने गांव में ।
होंठ मुस्कराने की आदत, भूल गये ।
मुक्त हंसी कब फूटेगी, अपने गांव में । (सहज कविता : अंक ५)

कवयित्री रेखा व्यास प्रात: के सौन्दर्य पर मुग्ध होती हुई कहती है कि -

'थक कर चूर होकर
विश्रांति पाती
संध्या-गोद में नित भोर ।' सहज कविता : अंक ४)

अपने वैचारिक जन्म के बाद से सहज कविता निरन्तर परिवेश के विस्तृत फलक को पकड़ने का प्रयास करती रही । यही कारण है कि गुटविहीन अनेक रचनाकार निरन्तर 'सहज कविता' से जुड़ कर इसे समृद्ध बनाते जा रहे हैं । आज 'सहज कविता' से जुड़े महत्वपूर्ण कवियों में रवीन्द्र भ्रमर, सुधेश, दिनेश चन्द्र द्विवेदी, वेद प्रकाश 'अमिताभ', 'अंजनी कुमार दुबे 'भावुक', दिविक रमेश, रेखा व्यास, आदर्श मदान, गोपाल गर्ग, सुरेन्द्र चतुर्वेदी, राजकुमार सैनी, चिरंजीत, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', फूलचंद 'मानव, कृष्ण बिहारी 'सहल', और पुरुषोत्तम 'प्रशांत' आदि हैं ।

डॉ० अंजनी दुबे 'भावुक' (कछार, असम)

मूल्यांकन

'छन्द ये मेरे' [१] युवा कवि अनन्त राम मिश्र 'अनन्त' की ४८ कविताओं का संग्रह है । इन का सृजन सवैया छन्द में हुआ है । अतः इसे उनके सवैयों का संकलन भी कह सकते हैं । आधुनिक हिन्दी कविता, विशेषतः समकालीन कविता में छन्दों के प्रति व्यापक उपेक्षा का भाव मिलता है, जिसे प्रयोगवाद और नयी कविता के समर्थकों ने हवा दी थी और जिसका दुष्परिणाम यह निकला कि आज की कविता प्रायः गद्यात्मक हो गई । इसके बावजूद ऐसे कवियों की संख्या भी नगण्य नहीं है, जो छन्द को किसी रूप में पकड़े हुए हैं, चाहे मुक्त छन्द के रूप में । पर अनन्त जी सवैया, घनाक्षरी आदि छन्दों में नवीन प्रयोग करते आ रहे हैं । खड़ीबोली में सवैया के उस्ताद जगदम्बा प्रसाद मिश्र हितैषी थे और घनाक्षरी के अनूप शर्मा । गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' सवैया, कवित आदि अनेक छन्दों के उस्ताद थे । हितैषी और सनेही की परम्परा को आगे बढ़ाने का बीड़ा अनन्त ने उठाया है ।

प्रस्तुत संग्रह को पढ़कर मेरे इस विश्वास को बल मिला आज कल हिन्दी कविता में छन्द की वापसी हो रही है, और गद्य-कविता दिनों-दिन अलोकप्रिय होती जा रही है । सवैया और कवित छन्दों में रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने लिखा, पर उनके परम्परागत विषय, प्रेम, सौन्दर्य, षटऋतु वर्णन, बारहमासा, नखशिख वर्णन आदि थे । कवि अनन्त ने सवैया छन्द को परम्परागत रीति के स्थान पर नयी रीतियों, विषयों, संदर्भों से जोड़ा है । उस में लौकिक प्रेम की व्यंजना के साथ जीवन-मूल्यों के पतन, भ्रष्ट राजनीति, दहेज की कुप्रथा, शरद, शीत, पतझर, वसन्त, दिवाली, होली, महात्मा गांधी, जवाहर लाल आदि भी कविता के आधार बने हैं । अयोग्य पांखडियों पर उन्होंने लिखा है -

कैसी विडम्बना खेत रहे चर गर्दभ बाघ की ओढ़ के खाल हैं,
कार्य न चाहते हैं, करना पर श्रेय किरीट के उत्सुक भाल हैं । (पृ० २७)

भ्रष्ट राजनीति के बारे में कवि की राय है :-

थोथा रखता है, सार सार को पछोरता है
ऐसा है विचित्र मित्र, सूप राजनीति का (पृ० १०९)

कवित्त की ये पंक्तियां रचनाकार की युगीन जागरूकता की सूचक हैं । पुस्तक के अन्त में दिये गये कुछ कवित्तों से भी स्पष्ट होता है कि अनन्त जी ने इन

परागत छन्दों को आधुनिक जीवन से जोड़ा है ।

प्रस्तुत संग्रह में सवैया और कवित्त छन्दों के शास्त्रीय नियमों का कुशलता पूर्वक निर्वाह किया गया है । इससे भी आगे बढ़कर कवि ने अनेक सवैयों में ग़ज़ल के रदीफ़ क़ाफ़िये की शैली को अपनाकर रचना में अतिरिक्त माधुर्य तथा कोमलता का समावेश कर दिया है । एक उदाहरण पर्याप्त होगा :-

सुरचाप को देखते ही दृढ़ संयम चंचल चंचल हो गया है,
पुरवा के प्रहार से कोमल प्यार भी घायल घायल हो गया है,
घर लौटा नहीं परदेसिया, यौवन पागल पागल हो गया है,
तन हो गया है बिजली बिजली, मन बादल बादल हो गया है ।

यहां 'हो गया है' की रदीफ़ से पहले 'चंचल चंचल' के क़ाफ़िये का निर्वाह अन्य पंक्तियों में भी हुआ है ।

विषयों की नवीनता के साथ नवीन उपमानों, प्रतीकों, उत्प्रेक्षाओं आदि के नवीन प्रयोग पूरी पुस्तक में बिखरे पड़े हैं । उदाहरण के लिए 'जनतन्त्र सा शारदी शासन', 'आपतकाल सा शीत', 'शीतलता रिपु सी', 'धूप छतों पर ...चाय सी' ऐसे ही प्रयोग हैं । इस पंक्ति में अनुप्रास की छटा देखिये :-

सुख स्वप्न-विकास, सुवास में है, रस रास में हास विलास में है ।

कवि की यह पंक्ति मुझे गर्वोक्ति नहीं, बल्कि यथार्थ प्रतीत होती है :-

भाव समाधि में सिन्धु के ज्वार, खुले रस द्वार हैं छन्द ये मेरे ।

-सुधेश

[1] छन्द ये मेरे (काव्यसंग्रह) कवि अनन्तराम मिश्र 'अनन्त' प्र० लोकवाणी संस्थान ए-४२ अशोक नगर, मण्डोली रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००९३

'जोहार बापू [2] महात्मा गांधी की १२५वीं वर्षगांठ के अवसर पर प्रकाशित काव्यसंग्रह है, जिसमें गांधी की स्मृति में लिखित १२५ कवियों की कवितायें हैं। युगपुरुष मोहनदास कर्मचन्द गांधी पर अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे गये, जिनमें सियारामशरण कृत 'बापू', दिनकर रचित 'बापू', रघुवीरशरण मित्र कृत 'जननायक', दुर्गादत्त त्रिपाठी का 'गांधी संवत्सर', रामगोपाल शर्मा दिनेश कृत 'विश्वज्योति बापू', अम्बिका प्रसाद दिव्य का 'गांधी पारायण', रमेशचन्द्र शास्त्री कृत 'देव पुरुष गांधी', प्रेम प्रकाश वर्मा का 'श्री गांधी चरितमानस', गुलाब खण्डेलवाल का 'आलोकवृत्त', सरगुकृष्णमूर्ति का 'श्रीकृष्ण गांधी चरित्र', नरेश मेहता कृत 'प्रार्थना पुरुष' उल्लेखनीय हैं । प्रस्तुत संग्रह की कविताएं विभिन्न समयों पर लिखी गयीं

और पत्रिकाओं में छपीं । अनेक कवितायें गांधी जी के जन्मदिवस, उनके अहिंसा और प्रेम के सन्देश, उनके राजनीतिक महत्व और बलिदान पर लिखी गयीं हैं । कुछ स्तुतिपरक रचनाएं हैं । वरिष्ठ कवियों में हरिऔध, मैथिली शरण, उदय शंकर भट्ट, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', गिरिजा कुमार माथुर, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन 'पन्त', बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, जगन्नाथ दास रत्नाकर, जानकी बल्लभ शास्त्री, दिनकर, नागार्जुन, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, अंचल आदि सम्मिलित हैं और बाद की पीढ़ी के अनेक सुपरिचित कवियों को भी स्थान दिया गया है ।

इस संकलन से भी स्पष्ट होता है कि महात्मा गांधी के व्यक्तित्व और रचनात्मक कामों ने भारत की आम जनता के साथ हिन्दी कवियों पर भी गहरा प्रभाव डाला । हिन्दी कविता पर गांधी जी के प्रभाव की खोज करने वालों के लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है । यह सम्भव है कि गांधी जी की राजनीति से असहमत होकर कुछ राजनीतिक समीक्षकों ने उनके राजनीतिक व्यक्तित्व का अवमूल्यन किया हो, पर कवियों ने राजनीतिक आग्रहों से ऊपर उठकर उस महापुरुष के प्रति भारत की विशाल जनता के हृदयोद्गारों को ही अपनी रचनाओं में वाणी दी है । जनमानस के स्पन्दनों को और उस पर गांधी जी की गहरी छाप का अनुमान इस संग्रह से लगाया जा सकता है । यह उनकी १२५वीं वर्षगांठ पर दिया गया औपचारिक तोहफ़ा मात्र नहीं है, बल्कि स्तरीय कविताओं का संग्रह है, जिसके लिये दोनों सम्पादक बधाई के पात्र हैं । संग्रह का नाम आकर्षक नहीं है, पर यह एक संग्रहणीय पुस्तक है ।

-सुधेश

[२] *'जोहार बापू' (काव्य संकलन) सम्पादक डॉ० रामस्वार्थ सिंह तथा डॉ० बालेन्दु शेखर तिवारी, प्र० जनता पुस्तक केन्द्र, रांची, प्रथम सं०, सन् १९९५, पृ० १३३*

इन्द्रप्रस्थ भारती

एक साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका

इन्द्रप्रस्थ भारती

समकालीन साहित्य के रचनात्मक मूल्यांकन की जीवन्त प्रस्तुति

इन्द्रप्रस्थ भारती

देश-भर के जाने-माने सृजनधर्मी शब्द-साधकों के साथ-साथ
उदीयमान प्रतिभाओं की सशक्त लेखनी का संयुक्त मंच

इन्द्रप्रस्थ भारती

हिन्दी भाषा और साहित्य के उन्नयन-हेतु सतत प्रयत्नशील
हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा प्रकाशित एक ऐसी संपूर्ण साहित्यिक पत्रिका जो
सामान्य मानवीय संवेदनाओं, उदात्त जीवन-मूल्यों तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना
का अनूठा संगम और हर वर्ग के पाठक-समुदाय की अपेक्षाओं के अनुकूल
पठनीय एवं संग्रहणीय है ।

लगभग पौने दो सौ पृष्ठ

मूल्य : एक प्रति १०/-रू० मात्र

(वार्षिक ३५/- रू० मात्र)

सुरुचि-सम्पन्न सकारात्मक अभिव्यक्ति की सूत्रधार 'इन्द्रप्रस्थ भारती' के
स्थायी सहभागी बनें ।

आज ही अपना वार्षिक शुल्क सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली के नाम
मनीऑर्डर / बैंक हुंडी / चैक द्वारा भिजवाकर सदस्यता प्राप्त करें ।

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. रामशरण गौड़
सचिव
हिन्दी अकादमी, दिल्ली

पत्र व्यवहार का पता-
समुदाय भवन, पद्म नगर
किशन गंज, दिल्ली-११०००७
दूरभाष : [illegible]२१८८९

SAHAJ KAVITA, A Hindi Quarterly /R. No. 59341/94

साहित्य संगम द्वारा प्रकाशित-प्रसारित साहित्य

फिर सुबह होगी ही (काव्य)	डॉ० सुधेश	३० रूपये
घटनाहीनता के विरुद्ध (काव्य)	"	३० रूपये
तेज़धूप (काव्य)	"	५० रूपये
आधुनिक हिन्दी और उर्दू काव्य की प्रवृत्तियां(आलोचना)	"	१०० रू०
साहित्य के विविध आयाम (आलोचना)	"	४० रूपये
कविता का सृजन और मूल्यांकन(आलोचना)	"	८० रूपये
साहित्य चिन्तन (आलोचना)	"	८० रूपये
सहज कविता, स्वरूप और सम्भावनाएं	"	६० रूपये
जीवन-मूल्य और स्कन्दगुप्त नाटक (आलोचना)	डॉ० कमलेश सिंह	५० रूपये

आगामी प्रकाशन

मन की उड़ान (यूरोपीय यात्रा-वृतान्त)	"
जिये गये शब्द (काव्य)	"
गीत और ग़ज़लें (काव्य)	"
पहली दुनिया में (अमरीका यात्रा-वृतान्त)	"
शेष स्मृतियां (संस्मरण)	"
उर्दू की सर्वश्रेष्ठ कहानियां (कहानी संग्रह)	अनुवादक - सुधेश

प्राप्तिस्थान

साहित्य संगम, डी-३४ विद्याविहार, प्रीतमपुरा, दिल्ली-११००३४

श्रीमती सुशीला शर्मा द्वारा १३३५ पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-११००६७ से प्रकाशित । श्री आदिशक्ति ऑफसेट प्रेस, १४३९-४०, राम नगर, लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२ द्वारा मुद्रित ।
अवैतनिक सम्पादक - डॉ० सुधेश